ओ३म्

शुद्धि-संस्कार-पद्धति

लेखकः—

श्री स्वामी चिदानन्द संन्यासी

प्रकाशकः-

भारतीय हिन्दू-शुद्धि सभा, दिल्ली।

ज्येष्ठ सम्वत् १९८१ वि०
सृष्टि सं० १९७२९४९०२८

मूल्य
चार आना

* ओ३म् *

शुद्धि-संस्कार-पद्धति

लेखकः—

श्री स्वामी चिदानन्द संन्यासी

ने

वेद शास्त्रानुकूल आर्य भाषा में

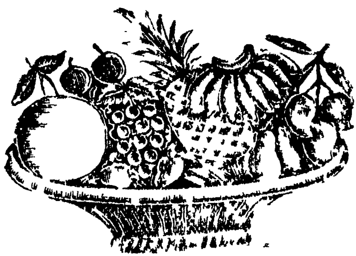
निर्मित की।

प्रकाशकः—

भारतीय हिन्दू-शुद्धि सभा दिल्ली।

प्रथमबार ४०००	ज्येष्ठ सम्वत् १९८५ वि० सृष्टि सं० १९७२९४९०२८	मूल्य चार आना

प्रकाशकः—
भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा
श्रद्धानन्द बाज़ार, दिल्ली।



मुद्रकः—
बा० कृष्णानन्द जी के प्रबन्ध से
श्रद्धानन्द प्रेस दिल्ली में छपा।

शुद्धि–पत्र

प्रेस कर्मचारियों की असावधानता से इस पद्धति में कहीं २ पर अशुद्धियें रह गई हैं इसलिये पाठक महोदय निम्न प्रकार शोध कर पढ़ें।

पृष्ठसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	१९	शान्ति थी	वन सकी थी
८	२४	ईश्व भक्त	ईश्वर भक्त
९	६	१५००	२५००
,,	७	२५०	२५००
१३	३	स से	से
१५	१०	बद्दि	यदि
२१	१२	देशकालानुसर	देशकालानुसार
२२	१८	सामग्रो	सामग्री
२३	२	कपर कचरी	कपूर कचरी
२५	१०	निष्कृत	निष्कृति
२६	१६	ने	न
,,	२२	शुद्धि	शुद्धि
२७	९	ब्रह्मतेन्	ब्रह्म तेन
२८	९	प्रकश सील	प्रकाश शील
२९	२	प्राथोना	प्रार्थना
,,	९	सत्य	सत्यं
,,	११	शुद्धि	शुद्ध
,,	१९	सस्पर्श	स्पर्श

पृष्ठसंख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	२	नसोमें	नसोंमें
,,	६	जघायें	जंघायें
,,	१२	चाहिये थे	चाहिये
,,	१७	शुद्धयर्थां	शुद्ध्यर्थां
३१	५	मांग सादि	मांसादि
,,	११	योलूंगा	बोलूंगा
,,	२१	देवीरभिष्ठये	देवीरभिष्टय
,,	२३	शुध्यर्थां	शुद्ध्यर्थां
३२	१६	मखला	मेखला
३०	१०	स्वस्तिभि	स्वस्तिभिः
३८	११	द्याव	द्यावा
३९	३	सुव्रताः	सुव्रतः
४६	१७	दारद्र	दरिद्र
४७	५	बायो	वायो
४८	९	प्रमात्मन्	परमात्मन्
५३	५	इष्टी	इष्टि
५४	१२	वरणेयम्	वरेण्यम्
,,	१४	धीमही	धीमहि
,,	१८	जधिक	अधिक
,,	२३	शंकल्प	सङ्कल्प
५८	१	ऽपानाया	ऽपानाय
५९	२	शान्तिः ब्रह्म	शान्तिर्ब्रह्म

॥ ओ३म् ॥

प्रस्तावना

शुद्धि-रसायन

'रसायन' आयुर्वेद शास्त्र में-ऐसी चमत्कारक वस्तु का नाम है, जिससे जरा और मृत्यु का नाश हो "रसायनन्तु तद्द्रव्यं यज्जरा मृत्यु नाशनम्।" वैद्य लोग बुढ़ापे में और मरणोन्मुखअवस्था में रसायन औषधियों का प्रयोग किया करते हैं। यदि वैद्य पूरा अनुभवी हो और औषध अच्छी प्रकार तैयार की हुई हो, दैव अनुकूल हो तो निःसन्देह लाभ होता है, और प्रयोक्ताका कार्य सफल होता है। जैसे शारीरिक रोगी के लिये अच्छे चिकित्सक की आवश्यकता है वैसे ही मानसिक रोगी के लिये शुद्ध सत्व प्रधान धर्म की आवश्यकता है। व्यक्ति के तुल्य जाति पर भी रोगों का आक्रमण हुआ करता है। रोग के विषय में उपेक्षा या प्रमाद करना सर्वथा अनुचित है। रोग की प्रारम्भावस्था में ही उसका उचित उपचार वा प्रतीकार करना चाहिए। क्योंकि-

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयःसच॥

"समझदार आदमी को चाहिए कि बढ़ते हुए रोग और शत्रु की उपेक्षा न करे क्योंकि रोग और शत्रु शिष्ट लोगों ने बराबर ही बतलाये हैं।" यदि प्रारम्भावस्था में

प्रतीकार न किया जाय तो रोग और शत्रु बढ़कर बड़े भयानक हो जाते हैं यह सर्व सम्मत बात है।

आर्य (हिन्दू) जाति उपर्युक्त दोनों प्रकार के रोगों से चिरकाल से आक्रान्त है। बाल विवाहादि दुष्कर्मों से इसकी शारिरिक निर्बलता बढ़ी है। बाल विवाहादि ऐसे कृत्य हैं जो हिन्दू जाति के अज्ञान की दुन्दुभि बजा रहे हैं। अज्ञान का मानसिकरोग, प्रमाद, आलस्य, उपेक्षादि महान् रोगों की जड़ है हिन्दू जाति इस घोर आक्रमण से तितर बितर हो गई है, चिरकाल से इस महारोग में ग्रस्त होकर डकरा रही है। "दैवो दुर्बल घातकः" दुर्बल का दैव भी सहायक नहीं होता। "दुर्बलता में दुष्ट लोग दबाया करते हैं" इसी नीति के अनुसार हिन्दू जाति का चिरकाल से अधःपतन हो रहा है, ठोकरों पर ठोकरें लग रही हैं, परन्तु इतनी दुर्दशा होने पर भी अज्ञानावस्थामें पड़ी २ खुर्राटे ले रही है। परमात्मा की अपार दया से शास्त्रज्ञान का अमृतघट लेकर एक सद्वैद्य उपस्थित हुआ, उसने हिन्दू जाति की नाड़ी की परीक्षा करके रोग का निदान किया और प्रयोग निर्धारित किया। रोगी को दुर्बल देखकर विधर्मी लोग लूट मचाते थे, रुग्ण भारत के बालक और देवियों का खुले मैदान अपहरण होता था, दानवों का सोल्लास ताण्डवनृत्य हो रहा था; रात अन्धेरी थी, रोगी का कोई उपचारक भी न था—बड़ी विकट समस्या थी, ऐसे दुःसमय में धैर्य पूर्वक चिकित्सा करना बड़ा कठिन काम था परन्तु दयावशंवद होकर आनन्दके साथ प्रयोग निश्चय

कर ही दिया। नुसख़ा सचमुच "रसायन" निकला, इस नुसखे में अनेक वस्तुओं का मेल था—यथा—

(१) बाल विवाह का काला मुंह, मात्रा १६. (२) सम्प्रदाय भेद और जाति भेदको तिलांजलि, मात्रा १६. (३) अछूतोद्धार मात्रा १६. (४) हिन्दू संगठन, मात्रा १६. (५) बाल विधवाओं का पुनर्लग्न, मात्रा १६. (६) वेदरक्षा और ईश्वर भक्ति, मात्रा १६. (७) गोसेवा, गोरक्षा, गोवधबन्द, मात्रा १६. (८) परस्पर सहानुभूति और प्रेम, मात्रा १६. इत्यादि कितने ही प्रधान अङ्ग इस क्षयरोगहारी नुसखे में मौजूद थे, परन्तु इन सबसे तिगुनी मात्रा पतितपावनी 'शुद्धि' की थी।

कहिये पाठक! कैसा अच्छा नुसख़ा था! आप जानते हैं इस प्रयोग का प्रयोजक सद्वैद्य कौन था? वही देवियों और अनाथों का रक्षक आदित्य-ब्रह्मचारी दया-निधि स्वामी दयानन्द सरस्वती।

प्रयोग की तीव्रता देख कर रोगी चकराया परन्तु उसकी उपयोगिता के समक्ष उसे शिर झुकाना पड़ा। जीवन के लिये इससे अच्छा कोई नुसखा था ही नहीं। संकुचित दृष्टि–अदूरदर्शी–कुछ वैद्याभासों (भोले सनातनी पण्डित आदिकों) ने प्रारम्भावस्था में विरोध जरूर किया परन्तु अन्त में सब मान गये और यतिराज की विजय ध्वजा फहरा गई। समय पाकर सब उनके निर्दिष्ट मार्ग के पथिक बने—सनातनधर्मी और आर्य समाजी सब, शुद्धि-यज्ञ की वेदी पर विराजमान हुए।

वाचकवृन्द! आप जानते हैं कि यदि बीमार की तीमारदारी या उपचार पूरा २ न हो, पथ्य सेवन न हो तो बीमार को लाभ नहीं होता। उपचार ठीक रीति से वही कर सकता है जो रोगी का पूरा हितैषी होकर स्वयं कष्ट उठाने को तैयार हो; उपचार करना वस्तुतः बड़ा कठिन है सही, पर परमात्मा के अटूट भण्डार में किसी प्रकार की कमी नहीं, लग्नसे काम करने पर कार्यमें सफलता हो ही जाती है। उपचार करने के लिये जब स्वामी जी को अपेक्षा हुई तो उनके परमभक्त धर्मवीर पण्डित लेखराम जी मिल गये। उन जैसा उपचारक मिल भी नहीं सकता था। इस बात का वर्णन स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने उनका जीवन चरित्र लिखते हुए किया है। पण्डित जी शुद्धि के प्रथम कार्यकर्ता थे—

> "क्रियेत चेत्साधुविभक्ति चिन्ता व्यक्तिस्तदासा प्रथमाभिधेया"—

वे लुटेरों को साथ २ सप्रमाण ललकारते भी थे। यह बात उनके कार्यकलाप और "कुलियात आर्य मुसाफिर" से प्रकट होती है। जिस समय एक पापिष्ठ नराधम नारकी यवन की छुरी से अमरगति को प्राप्त हुए वह समय सचमुच बड़ा चमत्कारक था। इस ब्रह्महत्या ने कायरों को धीर बना दिया, मौत के भय को हटा दिया। पण्डित लेखराम जी आर्यमुसाफिर, ऋषि के आदेशानुसार सब ही वैदिक धर्मों का प्रचार करते थे, परन्तु शुद्धि की ओर उन का विशेष लक्ष्य था। जब कोई सज्जन उन से

प्रश्न करता कि पण्डित जी ! मुक्ति का साधन बताइये? तो वे बड़े प्रेम से उत्तर दिया करते थे कि "मुसलमान को शुद्ध करना ही मुक्ति का साधन है" फिर यदि उन से प्रश्न किया जाता कि मुसलमान को शुद्ध करने मात्र से क्योंकर मुक्ति हो जाती है तो वे बड़ा लम्बा चौड़ा उत्तर देकर, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "गोकरुणानिधि" में जिस प्रकार हिसाब लगाकर समझाया है, उसी प्रकार हिसाब लगाकर समझाया करते थे कि एक मुसलमान के शुद्ध करने से अमुक प्रकार वैतरणी नदी के पार हो जावेगे। यह हिसाब शुद्धि समाचार के कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८४ वि० 'शुद्धि का सन्देश सुनो !' इस लेख से ठीक समझ में आसकेगा। इसी बात को श्री पं० देवी दत्त जी ने इस प्रकार लिखा है।

"यदि एक ईसाई अथवा मुसलमान एक पाव दोपहर और एक पाव सांझ को गोमांस खाता है, तब एक दिन में आध सेर मांस का हिसाब हो गया। और तीस दिन में तीस अधसेरा जिस के १५ सेर होते हैं अर्थात् एक बछिया एक माह में खा गया यदि वह १२ महीना जीवित रहा तब तो १२ बछिया खा गया अर्थात् जो अपनी अवस्था में पूर्णगो सत्ती थी। यदि वह ५० वर्ष जिन्दा रहा और केवल २५ वर्ष ही मांस भक्षण किया तो २५×१२ कुल ३०० गौवें जो कि एक गोशाला के बराबर होती हैं, हज़म कर गया। यदि ऐसे मांसाहारी को कोई हिन्दू शुद्ध करके मिला लेवे और मांस खाना छुड़ा देवे तो तीन सौ गौवों की वैतरणी की और पुण्य पृथक् लूटा जो एक गोशाला के बराबर होता है।

इन गौवों में से एक तिहाई बिया जावें और निम्न लिखित हिसाब से दुग्ध देंं तो कितना उपकार मनुष्यों का हो सकता है। यदि एक गौ तीन-तीन पाव सायं प्रातः दूध देती रहे तो डेढ़ सेर प्रतिदिन के हिसाब से ३० दिन का ४५ सेर दूध हुआ जिसके ४५ सेर अर्थात् एक माह में ९ पसेरी दूध हो गया। यदि वही गाय १२ माह इसी भान्ति दूध देती रहे तो १२ नवां १०८ पसेरी हुआ जिसका १३॥ मन दूध होता है। यदि अपनी ज़िन्दगी में वही गाय १० बार बियो जावे, तब तो इसी हिसाब से १० वर्ष का दूध १३५ मन हुआ। निदान सौ गौवों का दूध १३५०० मन हो गया। अब प्रति मनुष्य को एक सेरके हिसाब से दूध बांटा जावे तो ५४०००० मनुष्यों का पेट पोषण हो गया। अब इस दूध में से घृत निकाल कर बेंचः जावे अथवा भाई बिरादरी या साधु ब्राह्मणों को खीर पूरी खिलाई जावे अथवा इस घृत से हवन, यज्ञ या श्राद्ध करो तो कितना भारी पुण्य हुआ जिससे कि ईश्वर और देवता तथा पितर प्रसन्न होते हैं प्रत्युत हवन की सुगन्धित वायु में फैल कर रोगों को नष्ट कर देता है और प्राणी मात्र का दुःख दूर हो जाता है। सुगन्धि के फैलने से सुन्दर बादल बनते हैं उनसे जो वर्षा होती है वह उत्तम और रोगनाशक जल होता है। उत्तम जल से उत्तम और बलवर्धक औषधियाँ और अन्न उत्पन्न होता है। जिस के खाने से नीरोग वीर्य बनता है, जिससे सुन्दर, रोगरहित, बलिष्ठ, तेजस्वी, धर्मात्मा माता पिता के आज्ञाकारी, ईश्वरभक्त और देशभक्त तथा ब्रह्मचारी सन्तानें उत्पन्न होती हैं। जैसा कि मनु जी कहते हैंः—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टि वृष्टेरन्नं ततःप्रजा ॥ मनु ।

इसी भांति एक गौ अपनी आयु भर में पांच बछिया देवे तो उसके दूध का हिसाब जोड़ो—दूध की संख्या कितनी बढ़ जावेगी। और यदि पांच बछड़े देवे तब तो सौ गौवों के ५०० बैल हो गए जिन से २५००बीघा ज़मीन जोती जा सकती है। यदि प्रति बीघा ४ मन अन्न पैदा होवे तो २५०० बीघा का १०००० मन हुआ। अब प्रति व्यक्ति का एक सेर के हिसाब से बांटा जावे तो लाख (४०००००) मनुष्यों का उदर पोषण होता है (अस्तु, दूध और अन्न जो गाय और बैलों से उत्पन्न किया गया, उस सब से एक सेर प्रति मनुष्य के हिसाब से बांटा जावे तो ९४०००० (नौ लाख चालीस हज़ार) मनुष्यों का उदर पोषण होता है। इस के अतिरिक्त एक गाय के गोबर से प्रतिदिन पैसे के कण्डे प्राप्त हो जावें तो ३०० गौओं के कण्डे का मूल्य प्रतिदिन ४॥=) हुए। और इस हिसाब से एक माह के १४०।'=) हुए और एक साल की कण्डे की कीमत १६८८) हुए। इसी भान्ति गौवों के मूत्र और गोबर की पांस बनाकर खेत में डाली जावे तो पृथ्वी की उबरी शक्ति बढ़ जावेगी और अन्न की उत्पत्ति भी बहुत होगी।

निदान एक गाय का मारना ९४०००० मनुष्यों को मार डालने के तुल्य है और एक गोहत्यारे को शुद्ध करके मिला लेना ९४०००० मनुष्यों का जीवनदान देने के तुल्य हो पुण्य का भागी बनना है।"

पाठक गण ! धर्मवीर पण्डित लेखराम ने जिस शुद्धि वृक्ष को अपने रक्तसे सींचा, वह कभी फूले फलेगी नहीं, ऐसा नहीं होसकता था। 'जो गलता है वह फलता है' इस उक्ति के अनुसार उसका फलना आवश्यक था। हिंदू-सनातन धर्म की बड़ी २ सभाओं मे शुद्धि के प्रस्ताव होने लगे; (देखिये 'शुद्धि व्यवस्था' नामक पुस्तक जिसको 'भारतीय हिंदू शुद्धि सभा-दिल्ली' ने प्रकाशित कराया है)

उपर्युल्लिखित शुद्धि व्यवस्था नामक पुस्तक के पढ़ने से विदित होगा कि पण्डित लेखराम जी का बलिदान कितना प्रभावोत्पादक था ! उधर सनातन धर्मियों में शुद्धि के लिये तभी से सद्भाव पैदा होगए थे इधर आर्यसमाज की दोनों पार्टियें (गुरुकुल विभाग और कालिज विभाग) इस विषय में लगातार काम करने लगीं--ज़ोर से कार्य में संलग्नता के कारण अर्थात् अछूतोद्धार में विशेषभाग लेने के कारण काश्मीर में बा. रामचन्द्र जी नवयुवक का क़त्ल हुआ इस क़त्ल से आर्य समाज को क्षति ज़रूर पहुँची पर बा. रामचन्द्र का चलाया हुआ कार्य दुगुने उत्साह के साथ शुरु होगया काश्मीर मे इस से बड़ी सफलता हुई और हो रही है। इस अन्तर में अन्यान्य आर्य भाइयों को अनेक कष्टों का मुकाबला करना पड़ा पर वे घबडाये नहीं सोने को अग्नि मे डालने से अधिक चमक आजाती है। आर्यसमाज की यह अग्नि परीक्षा बड़ी आकर्षक सिद्ध हुई—समस्त हिंदू सम्प्रदायको शनैः२ यह बोध होगया कि मरणोन्मुखी हिंदू जनता के लिये 'शुद्धि रसायन है' और जो हिंदू संगठन के लिये

राम बाण है मुसलमान जैसी क्रूर जाति और हजरत ईसा के चलायेहुए चक्र से बचने का भीयही एक उपायहै।

पुनरुत्थान

तपश्चर्या का फल ज़रूर होता है--चाहे कुछ काल बाद ही हो उसकी अवश्यंभाविता में सन्देह नहीं। महानुभाव के तप का फल कुछ काल बाद यह हुआ कि "राजपूत क्षत्रिय महा सभा--आगरा" के महाधिवेशन में 'शुद्धि' का प्रयोग में लाना—सर्व सम्मति से पास होगया। "मलकाने" राजपूतों के भाग जागे--"मलकाने" राजपूत, पुराने समय में जाति बहिष्कृत होकर कुछ२ मुसलमानी व्यवहार करने लग गये थे इन लोगों की धड़ाधड़ शुद्धियां सहस्त्रों की संख्या में हुईं और वृन्दावन में सुप्रसिद्ध क्षत्रिय महानुभावों के साथ मलकाने क्षत्रियों का सहभोज या प्रीतिभोज हुआ जिसमें राजाधिराज सरनाहरसिंह जी वर्मा के. सी. आई. ई. शाहपुराधीश, सर राजा रामपालसिंहजी के. सी. आई. ई. कुरीं सदौली नरेश. राजा गोपाल राव साहब—खरवा नरेश प्रभृति महानुभाव सम्मिलित हुए।

एक महाशक्ति

मलकानों की शुद्धि की तह में एक और पवित्र शक्ति का हाथ था--जिससे यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होते चले गए। बीच२ में यद्यपि दैत्यों ने दल बांधर कर यज्ञ विध्वंस करने का घोर प्रयत्न किया परन्तु प्रकाश ने अन्धकार पर विजय प्राप्त की -- शत्रुओं के सब प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

यह शक्ति आर्य-समाज और भारतीय हिंदू शुद्धि सभा की प्राण स्वरूप थी। शरीर में जो सम्बन्ध प्राण का है वही सम्बन्ध शुद्धि सभा के साथ इस दैवी शक्ति का था। इस महाशक्ति का नाम था श्री स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी। पंडित लेखराम जी के खून से सींचा हुआ शुद्धि बीज, बाबू रामचन्द्र आदि के स्वरूप में अंकुरित हुआ। श्री स्वामी-श्रद्धानन्द जीका व्यक्तित्व बड़ा महत्व पूर्ण था उसकी धाक साधारण और असाधारण सब पर थी। स्वामी जी न केवल आर्य जाति के ही अपितु हिंदु जाति के भी लीडर थे, यही कारण था कि वे सबके आदरणीय थे। राजनैतिक क्षेत्र और धार्मिक क्षेत्र दोनों में उनका गहरा प्रभाव था--वे वृद्ध होकर भी युवाओं से अत्यधिक काम करते थे--इनकी गुणावलि से दानव लोग दहल गए। दानवों ने सोचा कि "यह नक्षत्र अस्त होजाय तो रोजे रखे जांय—मुहम्मद की वाटिका हरी भरी रहे अन्यथा यह उजड जायगी। यह देखो-- मुहम्मद की वाटिका उजड रही है --हाय--हमसे कुछ नहीं करते धरते बनता, और स्वामी श्रद्धानन्द रूप में पुष्पित और फलान्वित होगया। धिक्कार है-लानत है-डूबमरो, मुसलमानों! तुम्हारे बुजुर्ग ऐसे थे-वैसे थे, उन्होंने यह किया-वह किया बस, ऐसी ही दानवसंघ की कुकल्पनायें होगईं-जिनके प्रचार से अज्ञ मुसलमानों की मनोवृतियां दूषित होने लगीं--जिनका उनके हक में दुष्परिणाम यह हुआकि वृद्ध तपस्वी स्वामी श्रद्धानन्द जी को उनके समूलोन्मूलनार्थ "स्वर्गारोहण" करना पड़ा। स्वामी जी के सहसावियोग से उनके असंख्य भक्तों को असह्य दुःख जरूर हुआ परन्तु उन्हें 'अमरत्व

प्राप्ति के कारण कथञ्चित् धैर्य धारण करना पड़ा। दानवों ने तो सोचा था कि स्वामी जी का बलिदान होने से--उनके क़त्ल करने से मुहम्मदी वाटिका उजड़ने से से बच जायगी पर परिणाम उलटा हुआ--जो शुद्धि के विषय में सशंक थे वे भी कमरकस कर ललकारते हुए उठ खड़े हुए और धड़ाधड़ शुद्धि करने लगे। इन शुद्धियों का वृन्तात पाठक जानना चाहें तो भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के मुख्य पत्र "शुद्धि-समाचार" मासिक पत्र को पढ़ने की कृपा करें जिसका मूल्य सर्वसाधारण से २ रुपया वार्षिक लिया जाता है। इसी "शुद्धि समाचार" पत्र में बहुत सी शुद्धि विषयक ज्ञातव्य बातों का समावेश रहता है। अस्तु—

शुद्धि-संस्कार पद्धति को क्यों मुद्रित किया गया है इसके कई कारण है। जिन में—

पहिला कारण—सं० १९२३ ई० से बहुत से आर्य-हिन्दू सज्जन यह लिख रहे थे कि शुद्धि-संस्कार-पद्धति, स्वतन्त्र रूपेण पृथक् ही बनाई जाये। जिसे देख कर सर्व साधारण जन अनायासही 'शुद्धि संस्कार' करा सकें।

दूसरा कारण—शुद्धि संस्कार कराने के लिये पृथक् पद्धति न होने से जहां शुद्धि-संस्कार करने वाले को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था—वहां पर कई अवस्थाओं में शुद्धि-पद्धति के भिन्न२ होने से शुद्ध-कार्य में भी भारी विघ्न उपस्थित होते थे।

तीसरा कारण—शुद्धि-संस्कार-पद्धति, के पृथक् न होने से प्रायः ऐसी कई घटनायें उपस्थित हुई हैं कि शुद्धि-

संस्कार कराने के लिये कई सज्जन बड़ी २ दूर से शुद्ध होने वाले व्यक्तियों को साथ लेकर शुद्ध कराने के लिये अनेक कष्ट सहकर शुद्धि सभा के कार्यालय में शुद्धि कराने आये। यदि उनके पास 'शुद्धि-संस्कार पद्धति' होती-तो उनको इस प्रकार धन और समय का अपव्यय करके कष्ट उठाना न पड़ता।

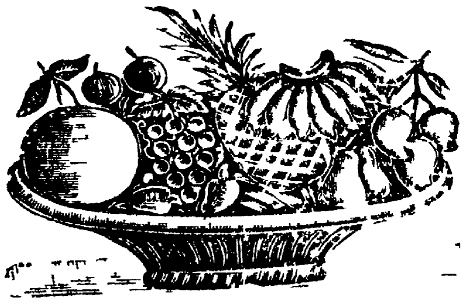
चौथा कारण—हमारे पास बहुत स्थानों से कई सज्जनों की ऐसी सूचना भी आई हैं कि शुद्ध होने के लिये लोग उन के पास गये और उन्होंने 'शुद्धि-संस्कार-पद्धति' से अन-भिज्ञ होने के कारण उन्हें उत्तर दे दिया कि हम शुद्धि करना नहीं जानते, इस लिये तुम्हें शुद्ध नहीं कर सके। इस कमी के कारण बहुत से शुद्धि-प्रार्थी पवित्र आर्य-हिन्दू धर्म से बञ्चित रह गये और निराश होकर वापिस अपने घरों को लौट गये।

इन सब बातों को सन्मुख रखते हुये हमने निश्चय किया कि जब तक कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ इस सम्बन्ध में न लिखा जावे तब तक सर्व साधारण के हितार्थ संक्षिप्त किन्तु प्रामा-णिक और आवश्यक 'शुद्धि-संस्कार पद्धति' प्रकाशित कर देनी चाहिये। इस लिये मैंने गत सं० १९२७ ई० के अप्रैल मास के 'शुद्धि-समाचार' में इस पद्धति के मुद्रित करने की घोषणा प्रकाशित कर दी। किन्तु 'शुद्धि-सभा और शुद्धि-समाचार का काम इतना बढ़ गया कि मुझे सभा के आव-श्यक कार्यार्थ बार २ 'सिन्ध' बिहार और यू० पी० का दौरा करना पड़ा--और इस पद्धति को पूर्ण करने का अवकाश न मिलसका और पुस्तक अधूरी ही प्रेस में पड़ी रही।

अब जब कि मैंने अपने अस्वस्थ होने पर दौरा बन्द कर दिया है तो मुझे इसको पूर्ण करने का कुछ अवकाश मिल गया और बिमारी की अवस्था में ही इसे पूर्ण कर रहा हूं।

इस 'शुद्धि-संस्कार पद्धति' में जो विशेष सन्निवेशनीय हो उसके लिये विद्वद्गण मुझे सूचना देने की कृपा करेंगे तो द्वितीयावृत्ति में धन्यवाद पुरस्सर सन्निविष्ट कर दिया जावेगा।

१० मई सन् १९२८ ई० ज्येष्ठ वदि ५ सं० १९८५ वि० शुक्र वार	सब का हित चिन्तक — चिदानन्द संन्यासी



॥ ओ३म् ॥

॥ परमात्मने नमः ॥

अथ शुद्धि-संस्कार पद्धति प्रारम्भ

ओं उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥
ऋ० १०।१३७।१।

ओं दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै ।
य० १।१३ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो मनुष्य सत्य धर्म से गिर गए हैं उनको पुनः उठाओ और जिन्होंने पापकृत्य किया है अथवा जिनका जीवन अपवित्र होगया है उनको फिर से शुद्ध करके पवित्र जीवन दो । हे मनुष्यो ! तुम पतितों को देव कर्मों में प्रवृत्त करने के लिये शुद्ध करो ।

"शुद्धि" उसे कहते हैं कि जिन पुरातन आर्य-हिंदुओं में किसी भी समय भय और धोखे से तथा ज़र (धन) ज़न

(स्त्री) ज़मीन के लोभ-लालच रूपी माया जाल में फंसने से अथवा विधर्मियों के सतत दुस्संसर्ग से अनार्य-अहिंदुत्व (ईसाइपन या मुसलमानियत) आगया है और जिसे आर्य-हिंदू अशुद्धि स्वरूप समझते हैं। उस अशुद्धि अर्थात् अहिंदूपन (ईसाइपन या मुसल्मानियत) को निकाल बाहर करना और उसके स्थान मे विशुद्ध आर्य--हिंदूपन जागृत करना "शुद्धि" है।

आर्य-हिंदू-धर्म आर्येतर का शुद्ध कर सक्ता है। चाहे वह नव मुस्लिम हों या जन्म के ईसाई हों अथवा जन्म के मुसलमान ही क्यों न हों।

आर्य-हिन्दु-धर्म की महिमा महान् है जिसे अभी तक भी बहुत से भोले भाले लोग नहीं समझ सके हैं। आर्येतर जितने सब के सब धर्म हैं प्रायः सम्प्रदायागत धर्म है। किन्तु आर्य-हिंदू-धर्म, आर्य जाति का धर्म तो है ही, साथ ही वह सर्व-मानव-जगत् का धर्म भी है। आर्य-धर्म की यह मुख्य शिक्षा है कि 'वास्तविक मानव-धर्म क्या वस्तु है। धर्म की वह परम्परा जो वैयक्तिक धर्म से लेकर अखिल ब्रह्माण्ड धर्म में समाप्त होती है-आर्य-हिंदू धर्म के ही अन्तर्गत है। यह धर्म परम्परा आज आर्य जाति के खण्ड विखण्ड होजाने पर भी अधिकांश में उसके अन्दर विद्यमान है। इसीलिये आर्य-जाति को जन्म सिद्ध पूर्ण स्वत्व प्राप्त है कि-वह मनुष्य मात्र के आर्य-धर्म-हित विरोधी भावों को अर्थात् अनार्य अहिंदूपन की अशुद्धि को

दूर करके उनके हृदयों में आर्यत्व का गौरव जागृत करे। इसका स्पष्टार्थ यही है कि जो भी आर्येतर--धर्मावलम्बी मानव-धर्म, और विश्व-धर्म, की शिक्षा लेने के लिये आर्य-धर्म की शरण में आना चाहें आर्य जाति उन्हें शुद्ध करके अपने में विना किसी भेद भाव के शामिल करलें।

आरम्भिक-व्यवस्था

शुद्धि-संस्कार के लिये जिन२ बातों की आवश्यकता होती है उनको सबसे पहिले उद्धृत किया जाता है । शुद्धि-संस्कार कर्त्ता आचार्य को चाहिये कि शुद्धि-संस्कार प्रारम्भ करने से पहिले उसकी ठीक २ व्यवस्था करलें ।

शुद्धिप्रार्थना—पत्र

जिस आर्येतर व्यक्ति की शुद्धि करना अभीष्ट है उससे यथासम्भव सब से पहिले निम्नप्रकार लिखित प्रार्थना पत्र ले लेना चाहिये ।

ओ३म

श्रीमान्

भगवन् !

मैं अमुक नामा, अमुक का पुत्र, अमुक स्थान वासी, आर्य–हिंदू धर्मको सर्व श्रेष्ठ सत्य सनातन-धर्म समझता हूं और निर्दोष बुद्धि-युक्त, स्वेच्छा से, प्रसन्नता-पूर्वक विना किसी लोभ, लालच, भय या दबाव से स्वयं अथवा परिवार सहित शुद्ध होकर आर्य-हिंदू बनना चाहता हूं। इसलिये कृपा करके मेरा शुद्धि-संस्कार कराकर आर्य-हिंदू धर्म में दीक्षित कर दीजिये ।

तिथि | हस्ताक्षर-विनीत प्रार्थी

सम्वत् | ———————

उपवास

प्रार्थना-पत्र लिखने के अनन्तर शुद्ध होने वाला व्यक्ति जिस तिथि को शुद्ध होना निश्चय करे उससे पूर्व यथावश्यक १ से ६ तक उपवास करे और यदि निराहार उपवास करने में अशक्त हो तो दुग्धपान या हल्का फलाहार करके उपवास करे और जितने समय तक उपवास करने का निश्चय हो एकान्त स्थान में बैठकर प्रणव का जप या ईश्वर चिन्तन के अतिरिक्त कोई काम न करे तथा न किसी से अधिक वार्तालाप करे।

शुद्धि-शाला

जिस स्थानपर शुद्धि-संस्कार किया जावे उसे शुद्धि-शाला कहते हैं। शुद्धि-शाला देशकालानुसार निर्माण होनी चाहिए। यदि देश और काल सर्वथा अपने अनुकूल हैं, तो शुद्धि-शाला को विशेष रूप से अलंकृत करके सुरम्य बनाया जाय और यदि परिस्थिति अपने प्रतिकूल हो तो विशेष रीत्या शुद्धि-शालाबनानेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु जिस प्रकार भी हो सके शुद्धि कर लेना ही मुख्य है।

शुद्धि-संस्कार कर्त्ता

शुद्धि-संस्कार कराने वाला व्यक्ति यथा सम्भव विद्वान, अपने कार्य में चतुर, सुशील, परोपकारी, दुर्व्यसन रहित प्रेमालापी. शुद्धि से सर्वथा क्रियात्मक सहानुभूति रखने वाला होनाचाहिये।

यज्ञ-पात्र

शुद्धि-संस्कार रूपी यज्ञ करने के लिये जिन पात्रों की आवश्यकता होती है उन्हें यज्ञ पात्र कहते हैं। शुद्धि-संस्कार करने के लिये स्रुचा, प्रोक्षणी पात्र, प्रणीता पात्र आज्य स्थाली आचमनी आदि यज्ञ-पात्रों की आवश्यकता विशेष तया पड़ती है। ये पात्र काष्ठ या ताम्बे के होते हैं।

यज्ञ--समिधा

हवन करने के लिये जिन लकड़ियों की आवश्यक्ता होती है उन्हें यज्ञ समिधा कहते हैं। जो लकड़ी जलते समय अधिक धुआं और दुर्गन्ध उत्पन्न न करे वही लकड़ी यज्ञ कर्म में उपयुक्त होती है। यथा पलाश (ढाक) पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व, शमी (जंड) और बादाम आदि वृक्षों की समिधा प्रायः निर्धूम और सुगन्धित होती हैं इसलिये इन्हीं या इसी प्रकार के अन्य वृक्षों की समिधा यज्ञ के काम में बर्तनी चाहियें।

होम-द्रव्य

यज्ञ में आहुति देने के लिये जिन औषधियों की आवश्यक्ता होती है उनको 'होम द्रव्य' या यज्ञ-सामग्री कहते हैं। होम करने के लिये रोग नाशक पुष्टि-कारक, सुगन्धित और मिष्ट-चार प्रकार के पदार्थ लेने चाहियें। यथा—गिलोय, अडूसा, कण्टकारी, अपामार्ग, कन्दादि, (रोग नाशक)चावल, गेहूं, उड़द, तिल, जौ, फल, नारियल, घी, दूध,

आदि (पुष्टि कारक) । केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन इलायची, जायफल, जवित्री, तुलसी, कपूर, कपूरकचरी, जटामासी, बालछड़, गूगल, कश्मीरीधूप, छाड छबीला, लवङ्ग, नागर मोथा, कस्तूरी आदि (सुगन्धित) गुड़, शक्कर, छुहारे, दाख आदि (मिष्ट) पदार्थ लेकर यज्ञ सामग्री तैयार करनी चाहिये।

यज्ञोपवीत

वैदिक कर्म काण्ड का अधिकारी बनने और सत्यभाषणादि व्रतों के पालनार्थ जिन त्रिसूत्रों को विधिवत् गले में डाला जाता है उसे यज्ञोपवीतया व्रतबन्धन अथवा जनेऊ कहते हैं। यज्ञोपवीत प्रायः प्रत्येक ब्राह्मण के घर में मिल सक्ता है यदि स्वयं न बना सकें तो वहां से ले लेना चाहिये।

मिष्टान्नादि

शुद्धि-संस्कार होने के अनन्तर उपस्थित जनता शुद्ध हुये भाई से क्रियात्मक सहानुभूति प्रकट करने के लिये उसके हाथसे मिष्टान्न और जल ग्रहण करे (रोटी-दाल-चावल का प्रबन्ध हो सके तो और भी उत्तम है) (इसलिये पेड़ा जलेबी, लड्डू मोहन भोग या इसी प्रकार का कोई अन्य मिष्टान्न पहिले से ही तैयार रक्खा जावे और शुद्धि संस्कार के पश्चात् उसे शुद्ध शुदा भाई के हाथ से उपस्थित जनता को बटवा दिया जावे)

क्रिया-आरम्भ

आवश्यक व्यवस्था हो जाने के पश्चात् जिस दिन में शुद्ध होने वाले प्रायश्चित्ती ने 'उपवास' अवधारण किया हो उस दिन प्रातः काल (जिस समय उचित हो) सिर पर शिखा (चोटी) रखाकर डाढ़ी, मूछ और सम्पूर्ण सिर का मुण्डन कराए तथा हाथ पैरों के नाखून भी कटावे * तत्पश्चात् अच्छे प्रकार स्नान करके पुराने वस्त्रों को उतार (यदि नए उपलब्ध हो सकते हों तो वे अन्यथा पुराने कपड़ों को ही साबुन आदि से साफ कर रखना चाहिए) नये शुद्ध वस्त्रों को धारण करके 'शुद्धि-शाला' (जहां शुद्धि-संस्कार करने का निश्चय किया हुआ हो) में जा उपस्थित जन-समूह को नम्रता से हाथ जोड़कर प्रणाम करे।

नोट स्त्रियों की शुद्धि करने के लिए उनके मुन्डन की आवश्यकता नहीं है शेष विधि उनसे भी यथा सम्भव करानी चाहिए। *

यदि शुध्यर्थी अधिक संख्या में हों या एक २ और दो या इससे भी अधिक ग्रामों के मनुष्य एक साथ शुद्ध होना

---

* कुक्षीगुह्यशिरः श्मश्रु भ्रूलोम परिकृन्तनम्।
प्राहृत्य परिपादानां नख लोमततः शुचि। देवल० ४१॥
अर्थ—बगल, गुह्यस्थान, सिर, डाढ़ी, मूछ, भौं, आदि के सम्पूर्ण बाल मुडाना और हाथ पैर के नाखून कटवा कर शुद्धि करे।

चाहें तो देशकालानुसार यथोचित व्यवस्था करलेनी चाहिए। †

प्रश्नोत्तर

तत्पश्चात् शुद्धि-संस्कार कर्त्ता आचार्य शुद्ध होने वाले व्यक्ति को पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख बैठने के लिये आदेश करे। पुनः उसके भले प्रकार बैठ जाने पर आचार्य शुद्ध होने वाले से पूछे—

किमर्थमत्राऽ गतोसि भोः

आप किस लिए यहां पधारे हैं। ऐसा पूछने पर शुद्ध होने वाला व्यक्ति उत्तर दे—

अमुक* नामाहं शुद्ध्यर्थमागतोऽस्मि भगवन्.

श्रीमान् जी! मैं शुद्धहोने के लिये आया हूं कृपा करके मुझे शुद्ध कीजिए।

---

† देश काल वयः शक्ति पापं चावेक्ष्य यत्नतः।
प्रायश्चितं प्रकल्पं स्याद्यत्रचोक्ता न निष्कृति॥
या० स्मृ० ३।२८४।

अर्थ— देश, काल, आयु, शक्ति और शुद्ध होने वाले के पाप को देखकर स्थिति के अनुसार यथोचित शुद्धि-संस्कार की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

* अमुक नामा के स्थान पर शुद्ध होने वाला अपना नाम उच्चारण करे।

उपरोक्त प्रकार प्रश्नोत्तर होने के अनन्तर अपना पूरा २ नाम, अपने पिता का नाम, अपनी जाति का नाम, अपने व्यवसाय का नाम, अपने ग्राम, डाकखाना और ज़िले का नाम तथा अपने शुद्ध होने के कारण को स्पष्ट शब्दों में निस्संकोच होकर वर्णन करे।

शुद्धि—स्वीकृति

तत्पश्चात् शुद्धि-संस्कार कर्ता आचार्य उपस्थित जन समूह के समक्ष शुद्ध होने वाले महाशय के प्रार्थना पत्र को उच्च स्वर से पढ़कर सुनावे और उनसे पूछे-क्या इस व्यक्ति को शुद्ध किया जावे? उपस्थित जनता की ओर से यह उत्तर मिलने पर कि 'हां, इनको शुद्ध किया जावे' तो-आचार्य नीचे लिखे मंत्रों का उच्चारण कराके शुद्धि प्रार्थी से देव प्रार्थना करावे। *

---

* शुद्धि समारोह की विधि अनुकूल परिस्थिति के होने पर ही की जानी चाहिये। परन्तु जहां पर स्थिति अनुकूल न हो और देश-काल भी प्रतिकूल हो-तो वहां बाह्य व्यापार को शिथिल करके गायत्री मंत्र से, या गंगास्नान से, या ओंकार ध्वनि प्रकाशक शङ्ख ध्वनि से अथवा 'ओ३म्' ऐसा कहलाने मात्र से या आचमन कराने मात्र से शुद्धि कर देनी चाहिये। क्योंकि—

आपत्कालेतु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात् स्वस्थोधर्मं समाचरेत्॥
पाराशर स्मृति ७-४३॥

१. ओं त्वंनः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे ॥ ऋ० ६।१६।३०

२. ओं पुनन्तु मा देव जनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥
य० १९।३९ ॥

३. ओं पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतु ँ्रनु ॥ १९।४० ॥

४. ओं यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।
ब्रह्मतेन पुनातु मा । य० १९।४१ ॥

५. ओं पवमानः मां अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः
यः पोतः स पुनातु नः ॥ य० १९। ४२ ॥

६. ओं यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनासश्च-
कृमा वयम । यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः
सजोषसः ॥ अथर्व० ६।११५।१ ॥

अर्थ—आपत्ति काल में शौचाशौच (यज्ञहवनादि) का विशेष विचार न करके शुद्धि करलेना ही मुख्य है । पश्चात् स्थिति अनुकूल होनेपर शुद्धि-समारोह अच्छी तरह से करें ।

७. ओं यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचो परिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः । सोम स्तानि स्वधया नः पुनातु ॥ अथर्व० ६ । १० । ९६ ॥

अर्थ १—हे ज्ञान स्वामिन ! पाप करने वाले (मुझ) पापी और पाप इन दोनो से बचाओ और हमारी रक्षा करो ।

२—सभी देवजन मुझे शुद्ध करें, सच्चे हृदय और सत्य बुद्धि से मुझे पवित्र करें । संसार के सभी प्राणी मुझे शुद्ध करें । और हे विद्वानों आप भी मुझे शुद्ध करें ।

३—हे प्रकाशशील स्वामिन् ! अपने शुद्ध प्रकाश से आप मुझे पवित्र करें और मुझे ज्ञान के अनुसार शुभ कर्म करने का सामर्थ्य भी प्रदान करें ।

४—हे अग्ने ! आपका जो प्रकाश अग्नि में दिखाई देता है उसी पवित्र प्रकाश से हे परमेश्वर, मुझे पवित्र कीजिये ।

५—पवित्र करने वाला भगवान् मुझको शुद्ध पवित्र करे जिस पवित्रता और शुद्धि रूपी जहाज़ के द्वारा वह पापों से पार करता है उसी से हमें भी पाप सागर से पार करें ।

६—हे परमात्मन् ! जान बूझकर अथवा बिना जाने हमने जो पाप किये हैं आपकी कृपा से सब विद्वान् लोग हमें इन पापों से बचायें और शुद्ध करें ।

७—जो भी पाप हमने मनसे, बुद्धि से अथवा नेत्रों से जागते या सोते हुए भी किया हो—हमारे उन सभी पापों को परमात्मा अपनी धारणा शक्ति से पवित्र करें—शुद्ध करें ।

आचमन

देव प्रार्थना होने के पश्चात् संस्कार कर्ता आचार्य स्वयं नीचे लिखे तीन मन्त्रों से दक्षिण हाथ में जल लेकर आचमन करे।

१. ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इस से एक आचमन।

२. ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥

इससे दूसरा आचमन।

३. ओं सत्य यशः श्रीर्मयि श्री श्रयतां स्वाहा ॥

इससे तीसरा आचमन ॥ तै० प्र० १० अनु-३२-३५ ॥

पुनः शुद्धि होने वाला व्यक्ति निम्न मंत्र से तीन आचमन करे।

ओं या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणासह शरीरे ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजा पतिः। अथ० ११ । ८ । १० । ३० ॥

अङ्ग--स्पर्श

आचमन के पश्चात् शुद्धि-प्रार्थी अपने बायें हाथ में जल ले कर दाहिने हाथ से जल के छींटे (कुशा द्वारा या जिस प्रकार सुभिता हो) देता हुआ निम्न लिखित मंत्रों से अङ्गों का सस्पर्श वा मार्जन करे।

१- ओं वाङ्ग म आग्येऽस्तु ॥ इस मंत्र से मुख।

२- ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इससे नासिकाके दोनों छिद्र।

३- ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इससे दोनों नेत्र॥

४- ओं कर्णयोर्मे चक्षुरस्तु॥ इससे दोनों कान॥

५- ओ बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इससे दोनों भुजायें।

६- ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ इससे दोनों जघांये।

७- ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ पार० गृ० सू० कं० ३ सू० २५ ॥

नाम संशोधन

मार्जन करने के पश्चात् शुद्ध होने वाले व्यक्ति का पहिले नाम का संशोधन करके सुन्दर और बोलने में सरल नाम रखनाचाहियेये। नाम रखते समय यह ध्यान रहे कि पुरुषों का समाक्षर (दो, चार या छ अक्षरों वाला) और स्त्रियों का विषमाक्षर (एक-तीन या पांच अक्षरों वाला) नाम रक्खा जावे।

प्रतिज्ञा

नाम संशोधन के पश्चात् आचार्य शुध्यर्थी से कहे कि आज से तुम्हारा नाम अमुक होगा। तुम प्रतिज्ञा करो कि—

१. मैं आज से-सदा आर्य-हिन्दू-धर्म पर दृढ़ रहूंगा ।
२. मैं आज से-सदा वेदाज्ञा का पालन करूंगा ।
३. मैं आज से-गौ और विद्वानों का मान तथा उनकी रक्षा करूंगा ।
४. मैं आज से-अभक्ष्य (गो मांसादि) कभी भक्षण न करूंगा ।
५. मैं आज से--प्रातः सायम-दोनो समय परमेश्वर की आराधना (सन्ध्यादि) किया करूंगा ।
६. मैं आज से पर स्त्री को माता-बहन और पुत्री समान समझूंगा।
७ मैं आज से-कभी असत्य न बोलूंगा ।
८. मैं आज से-चोरी न करूंगा ।
९. मैं आज से-किसी निरपराधी को कष्ट न दूंगा ।
१० आर्य धर्म मे शिक्षित होने के पश्चात् यदि मुझ पर कोई आपत्ति भी आजावे तो मैं उसका सामना दृढ़ता से करूंगा और सत्य सनातन वैदिक धर्म को कभी न छोड़ूंगा ।

पुनः आचमन

उपरोक्त प्रकार प्रतिज्ञा करने के पश्चात् आचार्य नीचे लिखे मंत्र से शुद्ध्यर्थी को तीन आचमन करावे ।

ओं शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ य० ३६।१२ ।

इस मंत्र को पढ़कर शुध्यर्थी तीन आचमन करे ।

यज्ञोपवीत

उपरोक्त प्रकार आचमनादि करने के पश्चात् पात्र विशेष देखकर (उचित हो तो) अधिकारी को निम्न मंत्रों से बिना दण्ड और मेखला के* यज्ञोपवीत धारण करावे। उस समय संस्कार कर्त्ता यज्ञोपवीत (जनेऊ) हाथ में लेकर—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सह जं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ १ ॥ यज्ञोपवीत मसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनो पनह्यामि ॥ २ ॥ पा० कां० २ ॥

इन मंत्रों को बोलकर शुद्ध होने वाले के बायें कन्धे के ऊपर -कण्ठ के पास से सिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में कटि तक धारण करावे।

---

* प्रायश्चित्त विर्निर्तेतु तदा तेषां कलेवरे। कर्तव्यः सूत्र संस्कारो मेखला दण्ड वर्जितः ॥ मनु०

अर्थ—प्रायश्चित के पश्चात् मेखला और दण्ड को छोड़ कर यज्ञोपवीत धारण करावे।

तेषां स्वयमेव शुद्धिमिच्छतां प्रायश्चित्तान्तर मुपनयनम्। आपस्तम्ब १। १। १। १।

अर्थ जो स्वयमेव अपनी इच्छा से शुद्ध होना चाहें उनको प्रायश्चित्त कराकर यज्ञोपवीत देना चाहिये

स्वस्ति वाचनम्

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् संस्कार कर्त्ता निम्न लिखित ईश्वर स्तुत्यादि मंत्र पाठ करे। उस समय शुद्ध्यर्थी अपने चित्त को एकाग्र करके ओंकार का जप मौनधारण करके जपता रहे और किसी से वार्तालाप न करे।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनास्वस्ति शान्तिमन्त्राः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥१॥ यजु० अ० ३०। मं० ३॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥ यजु० अ० १३। मं० ४॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ य० अ० २५। मं० १३ ॥

यःप्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशाना-स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ५ ॥ यजु० अ० ३२ मं० १०॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ६ ॥ यजु० अ० ४० । मं० १६ ॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ७ ॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ८॥ ऋग्वेद । मं० १ । सू० १-मं० १ । ६ ॥ स्वस्ति नो

मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः। स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥९॥ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १० ॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥ ११॥ ऋ० मण्डल ५ । सू० ५१ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥ १३ ॥ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो

दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ १४ ॥ सम्राजो
ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि
क्षयम् । ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो
आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥ १५ ॥ भरेष्विन्द्रं
सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी
मरुतः स्वस्तये ॥ १६ ॥ अपामीवामप विश्वाम-
नाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा
द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये
॥ १७ ॥ अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजा-
भिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा
सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १८ ॥
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने
स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति
राये मरुतो दधातन ॥ १९ ॥ स्वस्ति रिद्धि प्रपथे
श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो

अमासो अरणो निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥ २० ॥ ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २१ ॥ यजु० अ० १ । मं० १ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ २२ ॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २३ ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः

॥ २४ ॥ यजु० अ० २५ । मं० १४ । १८ । २१ ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ २५ ॥ अथर्व० कां० १ । अनु० १ । सू० १ । मं० १ ॥

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ २६ ॥ शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २७ ॥ शन्नो द्याव-पृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्प-तिरस्तु जिष्णुः ॥ २८ ॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं

शम्वस्तु वायुः ॥ २९ ॥ शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु रायः । शंन्न ऋभव सुकृताः सुहस्ता, शन्नो भवन्तु पितरो हवेषु॥३०॥ऋ०मं०७-सू०३५-मं-१-२-५-६-१२॥ शंनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभि स्रवन्तु नः ॥ ३१ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष॑ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयःशान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व॑ँ शान्तिः शांतिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ३२ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत॑ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३३ ॥ य० अ० ३६ । मं० १२ । १७ । २४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः

शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३४ ॥ येन कर्माण्यपसो
मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंक-
ल्पमस्तु॥ ३५ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्च-
न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु
। ३६ । येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतम-
मृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे
मनः शिवसंकल्पमस्तु । ३७ ।यस्मिन्नृचः साम
यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३८ । सुषारथिरश्वानिव यन्म-
नुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं
यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु
॥ ३९ । यजु० अ० ३४ । म० १—६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे

इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥४०॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ४१ ॥ अथर्व कां० १९ । सू० १५ । मं० ५ । ६ ॥

अग्न्याधान

ओं भूर्भुवः स्वः । गोमि० गृ० प्र० १ खं० १० सू० ११

इस मंत्र का उच्चारण करके शुद्ध अग्नि से घृत का दीपक जला और उस दीपक से कपूर प्रज्वलित करके किसी पात्र में रख उसमें छोटी२ लकड़ी लगा कर शुद्ध होने वाला व्यक्ति या शुद्धि संस्कार करने वाला उस पात्र को दोनों हाथ से उठाकर यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर अगले मंत्र से अग्न्याधान करे । मंत्र ये है ।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ १ ॥ य० ३ । ५ ॥

इस मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि को रख उस पर छोटे२ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मंत्र पढ़कर पंखे से अग्नि को प्रदीप्त करे ।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थेऽ युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥

य० १५ । ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की या ऊपर लिखित पलास आदि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में तर कर उनमें से एक २ नीचे लिखे मंत्र से एक२ समिधा को अग्नि में डाले । वे मंत्र ये है ।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने ध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे नान्नाद्येन समेधय-स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्नमम ॥ १ ॥

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन । य० ३ । १ ॥

ओं सुसमिधाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्नमम ॥ य० ३ । २ ॥

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचाय विष्ठय स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्नमम ॥ ३ । ३ ॥

इस मंत्र से तीसरी समिधा की आहुति देने के पश्चात् नीचेलिखे मंत्र से पांच घृत की आहुति देवे।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्नमम ॥

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेकर वेदी के पूर्व आदि चारों दिशाओं में निम्न मन्त्रों से जल छिड़कावे।

ओं अदितेऽनु मन्यस्व ॥ इस मंत्र से पूर्व।

ओं अनुमतेऽनु मन्यस्व॥ इस मंत्र से पश्चिम।

ओं सरस्वत्यनु मन्यस्व ॥ इस से उत्तर और

गोभि० गृ० प्र० खं० ३ । १—३

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचंनः स्वदतु ॥ य० ३० । १ ॥

इस मंत्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे। तत्पश्चात् आघारावाज्याहुति (एक आहुति यज्ञ कुंड के उतर भाग में और दूसरी आहुति दक्षिण भाग में) और आज्या भागाहुति (यज्ञ कुंड के मध्य में दो आहुति) घृत पात्र में से स्रुवा को भर कर अंगूठा-मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़ करके—

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्नमम ॥

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय—इदन्नमम ॥

इस मंत्रों से वेदी के उत्तर और दक्षिण भाग में प्रज्वलित अग्नि में आहुति दे। तत्पुनः—

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्नमम ॥

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय-इदन्नमम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी चाहिए। तत्पश्चात् निम्न लिखित चार मंत्रों से प्रज्वलित समिधाओं पर चार घृत की व्याहृति आहुति देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्नमम ॥

ओं भुववायवेस्वाहा। इदं वायवे—इदन्नमम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय-इदन्नमम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः—इदन्नमम ॥

ये चार घृतकी आहुति देने के पश्चात् निम्न मंत्र से एक स्विष्ट कृत आहुति घृत या भात की देवे।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वान्यून मिहा करम। अग्निष्टत्स्विष्ट कृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्ट कृते सुहुत हुते सर्व प्रायश्चित्ता हुतीनां कामानां समर्द्ध यित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्ट कृते—इदन्नमम ॥ शतपथ कं० १४ ९।४।२४॥

इस मंत्र से एक आहुति देने के पश्चात् "यद्देवा-आदि" नीचे लिखे ९ मंत्रों से विशेष आहुति दिलावे।

ओं यद्देवा देव हेडनं देवा सश्चकृमा-वयम्। अग्निर्मा तस्मादेन सो विश्वान्मुञ्च त्व ँ हसः स्वाहा ॥१॥*

---

*अर्थ १- हे विद्वानों! हमने ईश्वर वेद और धर्म के विषय में जो जो अनर्थ और अपमान किये हैं अन्तर्यामी परमात्मा हमें उन पापों से बचावे।

ओं यदि दिवा यदि नक्तमेना ᳪ सिचकृ-
मा वयम। वायुर्मा तस्मादेन मो विश्वान्मुञ्च
त्व ᳪ हसः स्वाहा ॥२॥

ओं यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एना ᳪ सिच-
कृमा वयम। सूर्यो मा तस्मादेन मो विश्वा-
न्मुञ्चत्व ᳪ हसः स्वाहा ॥३॥

ओं यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्या-
धि धर्मणि तस्यावयजनमसि स्वाहा ॥४॥
य० २० । १४ ॥१७॥

२—दिन में अथवा रात्रि में यदि हमसे पाप होगए हों तो सर्वत्र व्यापक प्रभु अपनी उदारता से हमें उन पापों से बचाकर शुद्ध पवित्र करे।

३—जागते हुए अथवा सोते हुए यदि हमने पाप किये हों तो तेजस्वी परमात्मा हमें उन सभी पापों से बचावे।

४ ग्राम में अथवा जंगल में, किसी के सामने अथवा एकान्त में जो पाप हमने किये हैं या दीन, हीन, दरिद्र व्यक्ति अथवा धनी मानी सज्जन से दुर्व्यवहार किये हैं और अपने ही निकट वर्ती धर्मात्मा जनों वा बान्धवों के साथ छल कपट किये हैं हे परमेश्वर! हमें उन सब पापों से बचाओ।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम । तेनर्ध्यासमिदमह मनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा । इदमग्नये—इद-न्नमम ॥५॥

ओं वायोव्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम । तेनर्ध्या समिदमह मनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदं वायवे—इद-न्नमम ॥६॥

५—हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन् ! आप व्रतों के पति हैं मैं आपको व्यापक जानता हुआ यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं झूठ को छोड़ सदा सत्य बोला करूगा और सत्य का ही ग्रहण करता हुआ सत्य व्यवहार किया करूंगा । आप अपनी कृपा से मुझे शक्ति प्रदान करें कि मैं इस व्रत पर दृढ़ रहूं ।

६—हे प्राणाधार व्रतपते परमेश्वर ! मैं आपको व्यापक जानता हुआ यह व्रत (प्रतिज्ञा) करता हूं कि-मैं झूठ को छोड़ सदा सत्य बोला करूंगा और सत्य का ही ग्रहण करता हुआ सत्य व्यवहार किया करूंगा आप अपनी कृपा से मुझे शक्ति प्रदान करें कि मैं इस व्रत पर दृढ़ रहूं ।

ओं सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥७॥

ओं चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा । इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥८॥

७—हे प्रकाशशील व्रतपते परमात्मन् ! मैं आपको व्यापक जानता हुआ यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं झूठ को छोड़ सदा सत्य बोला करूंगा और सत्य का ही ग्रहण करता हुआ सत्य व्यवहार किया करूंगा । आप अपनी कृपा से मुझे शक्ति प्रदान करें कि मैं इस व्रत पर दृढ़ रहूं ।

८—हे प्रेम के सागर व्रतपते स्वामिन् ! मैं आपको व्यापक जानता हुआ यह प्रतिज्ञा करता हूं कि-मैं झूठ को छोड़ सदा सत्य बोला करूंगा और सत्य का ही ग्रहण करता हुआ सत्य व्यवहार किया करूंगा । आप अपनी कृपा से मुझे शक्ति प्रदान करें कि मैं इस व्रत पर दृढ़ रहूं ।

ओं व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमह मनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदं इन्द्राय-इद-न्नमम ॥६॥†

उपरोक्त ९ आहुति देने के पश्चात् संस्कार कर्त्ता नीचे लिखे ३ मंत्रों का शुद्ध होने वाले व्यक्ति से उच्चारण करावें और एक २ मंत्र से एक २ आहुति घृत की दिलावे।

ओं त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे स्वाहा॥ ऋ०।६।१६।३०॥*

---

†९ हे परमेश्वर ! आप बड़े२ व्रत धारियों के भी व्रतपति हैं। मैं आपको व्यापक जानता हुआ यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं झूठ को छोड़ सदा सत्य बोला करूंगा और सत्य का ही ग्रहण करता हुआ सत्य व्यवहार किया करूंगा। आप अपनी कृपा से मुझे शक्ति प्रदान करें कि मैं इस व्रत पर दृढ़ रहूं ।

*अर्थ १—हे परमात्मन् ! आप सर्वान्तर्यामी होकर सब के मानसिक भावों को भले प्रकार जानते हैं। आप हमारे पापों को भी जानते हैं इसलिये हे भगवन् ! हमारी पापों से रक्षा कीजिए ! आप से बढ़कर हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं !

ओं यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचो परिय जाग्रतो यत स्वपन्त । सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु स्वाहा ॥ अथर्व० ॥ ६ ।१० । ६६ ॥

ओं यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्करी रात्रिं जहात्युषसश्च केतून । एवा हश सर्वं दुर्भूतं कर्त्रंवत्या कृताकृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि स्वाहा ॥ अथर्व० १० । १ । १ ॥

२—हे परमेश्वर ! हमने जागते और सोते हुए मन बुद्धि तथा इन्द्रियों से जो पाप किये हैं । शान्तस्वभाव, आप हमें सब पापों से पवित्र करें--सिवाय आपके और कौन है जो हमें पवित्र करे !

३—जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है और प्रातःकाल का प्रकाश रात्रि को दूर भगाता है । उसीप्रकार हम भी सब प्रकार के दुर्गुणों दुर्व्यसनों और पापों को नाश करें । जैसे हाथी नदी में घुसकर सब मैल दूर करलेता है वैसेही हम भी सब दुष्ट गुणों को दूर करें ।

अघमर्षण

उपरोक्त विशेष यज्ञ होने के पश्चात् संस्कारकर्ता शुद्ध होने वाले से नीचे लिखे अघमर्षण मंत्रों का पाठ करावे।

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

ओं समुद्रादर्णवादधि सम्वत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।

अर्थ १—परमात्मा ने अपने शुद्ध ज्ञान से अटल नियम और सत्य को प्रकाशित किया है जिस के कारण रात्रि उत्पन्न हुई तत्पश्चात् सूक्ष्म अन्तरिक्ष प्रतीत होने लगा।

२—अन्तरिक्ष के स्पष्ट होजाने पर कालचक्र का आरम्भ हुआ और दिन रात के व्यवहार होने लगे। यह सब उस सर्व-नियन्ता परमेश्वर ने ही किया जिस के वश में सब संसार गतिमान् हो रहा है।

३—इसी प्रकार धारण कर्त्ता परमात्मा ने सूर्य और चन्द्र को अपने नियम में चलाकर प्रकट किया। प्रकाश और पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष में रहने वाले सब नक्षत्रों को भी सुख-देने वाले परमेश्वर ने रचा यह लोक और व्यवस्थायें जैसी पहिली

दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

ऋ० मं० ॥ १० ॥ १९० ॥

इस प्रकार अघमर्षण मन्त्रोच्चारण के पश्चात् शुद्धि संस्कार कर्त्ता हाथ में या कुशा से जल लेकर शुद्ध होने वाले व्यक्ति का नीचे लिखे मन्त्रों से मार्जन करे।

ओं आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन महे रणाय चक्षसे ॥१॥

ओं योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

ओं तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० सू० ९ मं० १—३ ॥

ओं आपः शिवाःशिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥ ४ ॥पा०कां० ।१। ८।

थीं वैसी ही इसबार भी रची गयीं। परमात्माका अद्भुत ऐश्वर्य है। (हे भगवन ! जिस प्रकार मैं पाप करने से पूर्व शुद्ध था वैसे ही अब भी शुद्ध हो जाऊं)

मार्जन (पानी के छींटे देना) करने के पश्चात् संस्कार कर्ता बांये हाथ में जल लेकर और दाहिने हाथ से उसे ढाप कर निम्न मंत्रपढ़े और जल को इशान दिशा में डाल दे।

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयःसन्तु। दुर्मि-त्रिया स्तस्मै सन्तु योऽस्मान द्वेष्टी यंचवयं द्विष्मः॥ य० ३६।२३॥

तत्पुनः संस्कार कर्ता और शुद्ध होने वाला दोनो नीचे लिखे तीन मंत्रों से तीन २ आचमन करें।

ओं अमृतोपस्तरण मसि स्वाहा॥ १॥ इससे एक.

ओं अमृतापि धानमसि स्वाहा॥ १॥ इससे दूसरा।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीःश्रयतां स्वाहा॥ ३॥ तै० प्र० १० आ० ३२—३५॥

इससे तीसरा आचमन करे।

गायत्री--उपदेश

उपरोक्त विधि होने के पश्चात् संस्कार कर्ता आचार्य गायत्री का उपदेश करे (पहिले शुद्ध होने वाले से मंत्र का जप करावे पुनः उपदेश करे)

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो

देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात॥

य० ३६। ३॥

धीरे २ इस मंत्र का जप कराके संक्षेप से निम्नलिखित उपदेश करे।

(ओ३म्) यह परमेश्वर का मुख्य नाम है जिस नाम के अन्तर्गत परमेश्वर के सब नाम आजाते हैं। (भूः) जो प्राणों का प्राण (भुवः) सब दुखों से छुड़ानेवाला (स्वः) स्वयं सुख स्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति कराने वाला है, उस (सवितुः) सब जगत की उत्पत्ति करने वाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय करने वाले परमात्मा का जो (वरेणयम्) अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने वाला पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत) उसको हम लोग (धीमही) धारण करें (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः बुधियोंको उत्तम गुण.कर्म,स्वभावोंमें (प्रचोदयात) प्रेरणा करे। इसी उद्देश्य के लिये उस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और उससे भिन्न किसी को उपास्य-इष्ट देव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये।

तत्पुन निम्न लिखित शुभ संकल्प मंत्रों का पाठ करके उनका अर्थ सुनाये। और जो उपदेश दातव्य हो वह देवे।

शुभ संकल्प

गायत्री उपदेश के पश्चात् निम्न मंत्रों का उच्चारण कराकर आचार्य शुभ शंकल्प करावे।

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैतिदैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ १ ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनःशिव संकल्पमस्तु ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ १—जो मेरामन जागते और सोते समय दूर २ चला जाताहै और जिस की शक्ति से इन्द्रियें अपने विषयों की ओर जाती हैं ऐसा प्रभाव शील मेरा मन शुद्ध सकंल्प वाला हो।

२—जिस के द्वारा उपकारी लोग बड़े २ उपकार के काम करते हैं जो संसार की भलाई का बड़ा भारी साधन है और जो सृष्टि में बड़ी अद्‌भुत वस्तु है वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

३—जिस के द्वारा ज्ञान और चेतनता प्राप्त होती है तथा जो प्रत्येक प्राणी के भीतर जीती जागती ज्योति है और जिसकेबिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। हे परमात्मन् ! वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्य त्परिगृहीत ममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजू ँषि यस्मिन प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनःशिव संकल्पमस्तु ॥ यजु० ३४।मं०।१-६॥

अर्थ४—जिस के द्वारा भूत भविष्य और वर्तमान की घटनायें जानी जाती हैं तथा जो बड़े २ यज्ञों के करने की प्रेरणा करता है ऐसा मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

५—जिस में ऋक्, यजुः, साम और अथर्व अर्थात् सब विद्यायें रथ की नाभि में अरों के समान स्थित होती हैं और जिसमें सब सृष्टि का ज्ञान रहता है। हे भगवन्! ऐसा मेरा मन शुद्ध संकल्प वाला हो।

६—जिस प्रकार अच्छा सारथी अपने घोड़ों को नियम में रखता है उसी प्रकार जो सब मनुष्यों को वश में करने वाला है। हे परमात्मन्! मेरा वह मन शुद्ध संकल्प वाला हो। अर्थात्—मैं सदैव पाप कर्मों से पृथक् रहता हुआ सत्य सनातन धर्म पर दृढ़ता पूर्वक आरूढ़ रहूं।

व्रताहुति

दातव्य उपदेश के पश्चात् शुद्धि संस्कार कर्ता शुद्ध हुये व्यक्ति के हाथ से नीचे का मंत्र बुलवा कर एक वृत-आहुति प्रज्वलित अग्नि में डलवावे।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्। तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ य० १।५।

नैतिक—आहुति

वृत-आहुति देने के पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से नैतिक आहुति देवें।

ओ३म् सूर्यो ज्योति ज्योतिःसूर्यः स्वाहा॥१॥

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चःस्वाहा॥२॥

ओ३म् ज्योतिःसूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥३॥

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरु षसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥ ४॥

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्ने प्राणाय-इदन्न मम॥

ॐ भुवर्वायवे ऽपानाया स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय-इदन्न मम ॥

ॐ स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम॥

ॐ भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवा य्वादित्येभ्य-प्राणापानव्यानेभ्य-इदन्न मम ।

ॐ आपोज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ॥

पूर्णाहुति

समस्त शुद्धि विधि समाप्त होने के पश्चात् सब लोग खड़े होकर नीचे लिखे मंत्र को तीन बार उच्चारण करके ३ पूर्णाहुति देवें ।

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥ ३ ॥

शान्ति पाठ

पूर्णाहुति देने के पश्चात् निम्न मंत्र को सब लोग बोलकर शान्ति पाठ करें ।

ओं द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी

शान्तिः रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वन-
स्पतयः शान्ति र्विश्वेदेवाः शान्तिः ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्ति शान्ति रेव शान्तिः मा सा शान्ति-
रेधि ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥
य० ३६ । १७ ।

समान व्यवहार

शान्ति पाठ होने के पश्चात् शुद्ध हुये व्यक्ति से प्रणामादि करा उसको प्रीति वर्धनार्थ उसके हाथ से दान दक्षिणा*

---

*संस्कारान्ते च विप्राणां दानं धेनुश्च दक्षिणा ।
दातव्यं शुद्धिमिच्छद्भिरश्वगोभूमिकाञ्चनम् ॥
देवल स्मृति १३ ॥

अर्थ—शुद्धि संस्कार के पश्चात् शुद्ध हुआ व्यक्ति विद्वानों को घोड़ा, गाय, भूमि और स्वर्णादि वस्तुओं का दान दे और संस्कार कर्ता आचार्य को गौ दक्षिणा में भेंट करे ।

तदासौ तु कुटुम्बानां पंक्तिमाप्नोति नान्यथा । देवल स्मृ० १४ ।
स्वर्त्तोणि ज्ञाति कर्माणि यथापूर्वं समाचरेत् । मनु० ११ ।

भावार्थ—देवल और मनु भगवान् की आज्ञा है कि—शुद्धि संस्कार के पश्चात शुद्ध हुआ मनुष्य अपने कुटुम्ब

तथा मिष्टान्न (या जो उपस्थित हो) ग्रहण करें और उसके साथ सदा और सर्वथा यथा योग्य समादर-समानता का व्यवहार करें । इत्योम् ।†

और जाति वालों की पंक्ति में समान भोजनादि का अधिकारी बन जाता है । ऐसा नहीं कि वह पंक्ति में शामिल न हो सके तथा-शुद्ध होने के पश्चात् अपनी पूर्व जाति के सम्पूर्ण कामों को यथापूर्व कर सक्ता है । इति ।

†यदि भजन मंण्डली आदि का प्रबन्ध हो तो इस समय भजन और आरती आदि समयोचित मंगल वादना करे ।

❊ समाप्त ❊



भा० हि० शुद्धि सभा के उद्देश्य

भा० हि० शुद्धि सभा के उद्देश्य निम्नलिखित प्रकार हैं।

क—हिंदू समाज से बिछुड़े हुए तथा अन्य मतावलम्बी भाइयों का पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित करना।

ख—शुद्धिक्षेत्र में प्रेम तथा धर्म का प्रचार करना।

ग—पाठशालाओं तथा अन्य शिक्षाप्रद संस्थाओं द्वारा शुद्धिक्षेत्र में विद्यादि का प्रचार करना।

घ—अनाथ तथा विधवाओं के धर्म की रक्षा करना।

ङ—आवश्यक्तानुसार शुद्धिक्षेत्र में चिकित्सालय खोलना।

च—धार्मिक इतिहासिक तथा अन्य पुस्तकें, जो सभा के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हों, छपवाना।

छ—सभा के उद्देश्यों की पूर्त्यर्थ अन्य आवश्यक साधनों को काम में लाना।